शुभ स्मरण

जैनधर्म दिवाकर श्रीमान् उपाध्यायजी *आत्मारामजीसे* मैं गतवर्ष जोधपुरमें मिला था, परंतु तब यह कल्पना न थी कि फिर इनका स्निग्ध समागम हो सकेगा। उपाध्यायजीने अल्वरसे मुझे सूचित किया था कि आपको दिल्ली आकर मुनियोंको पढाना होगा। अस्तु,मैं दिल्ली आ पहुंचा और सब कार्य मंगलमय पद्धतिसे समाप्त भी हो चुका।

मेरी इस अध्यापन प्रवृत्तिकी व्यवस्थाका सारा भार दिल्ली निवासी उदारचेता *लाला पुरणचंदजी रतनलालजी* पारख (मालीवाडा) ने और महेन्द्रगढ निवासी दानवीर *सेठ ज्वालाप्रसादजीने* उठाया। इसके लिये उक्त दोनों महानुभावोंका मैं विशेष कृतज्ञ हूं।

उपाध्यायजीके विनयी शिष्य *हेमचंदजी मुनि* और श्रीमान् पृथ्वीचंद्रजी महाराजके शिष्य *कवि अमरचंदजी* ये दोनों मेरे विद्यार्थियोंका स्नेह भी मैं कभी नहीं भूल सकता।

मैंने तो यह छोटासा निबंध अपनी मातृभाषा गुजरातीमें ही लिखा था परंतु हिंदी भाषाभाषी भी इससे लाभ उठा सकें एतदर्थ इसका हिंदी अनुवाद व प्रकाशन अतीव आवश्यक प्रतीत हुआ और यह श्रीमान् लाला रतनलालजी की सहायताके बिना अशक्य था, इसलिये हिंदी भाषाभाषी सज्जन श्रीमान् रतनलालजीके अवश्य कृतज्ञ हैं।

यह अनुवाद *तत्त्वार्थसूत्र जिनागम समन्वय* नामक पुस्तक को

भूमिका रूप है अत यह, उक्त पुस्तकके साथ ही छपना तो क्या ही अच्छा होता ? मगर कई कारणोंसे यह न हो सका। अस्तु।

मूल गुजरातीका हिंदी अनुवाद अर्जुनके उपसंपादक भाई मुकुटबिहारीलालजी तमाम किया है और उक्त अनुवाद संबंधी व्यवस्थाके प्रयत्नका सारा श्रेय पुस्तकालयप्रेमी भाई गुलाबचंदजी (लोढा) को है अतः ये दोनों भाई भी विशेषतः धन्यवादार्ह हैं।

कार्तिकी पूर्णिमा
दिल्ली

बेचरदास

तत्त्वार्थसूत्र-जैनागमसमन्वय पर एक दृष्टि

[ले०—अध्यापक बेचरदास दोशी]

आर्यों के आध्यात्मिक विचारों के विश्वम्भर प्रवाह को बहाने वाली त्रिवेणी आज कितने ही काल से हमारे सामने निरन्तर बहती ही रहती है। इस त्रिवेणी के तट से अनेकों को अपूर्व प्रेरणा मिलती रही है, उसके कल-कल-नाद से अनेकों के हृदय गुंजायमान हो रहे हैं और कितने ही तो उसमें स्नान करके स्नातक भी हो चुके हैं। उसके प्रवाह का मूल स्रोत श्रीकृष्ण[1] की अनासक्ति, श्रीमहावीर का त्याग और श्रीबुद्ध की करुणा है। एक प्रकार देखा तो अनासक्ति, त्याग और करुणा ऐसी वृत्तियाँ हैं जो परस्पर ओत-प्रोत ही हैं। आरम्भ से लो या अन्त से, चाहे जिस प्रकार देखो, ये तीनों वृत्तियाँ परस्पर कार्य कारण की अटूट शृंखला से आबद्ध प्रतीत होती हैं।

आर्यों के आध्यात्मिक विचारों की त्रिवेणी

१—चित्रा तु देशनैतेषां स्याद् विनेयानुगुण्यतः ।
यस्मादेते महात्मानो भवव्याधिभिषग्वराः ॥
यस्य येन प्रकारेण बीजाधानादिसंभवः ।
सानुबन्धो भवत्येते तथा तस्य जगुस्ततः ॥
—योगदृष्टिसमुच्चय—१३४—१३५ श्लो०

दूसरे रूप में कहें तो, प्रत्येक वृत्ति में अन्य दोनों वृत्तियाँ भी सम्मिलित ही हैं—अन्य दो वृत्तियों के साथ बगैर, इनमें से किसी भी एक वृत्ति का वास्तविक अस्तित्व हो ही नहीं सकता, वह कायम नहीं रह सकता, जीवन में जितने परिमाण में इन वृत्तियों का प्रादुर्भाव हो, वही जीवनोत्थान की माप का थर्मामीटर है। व्यक्ति या समष्टि का हित इन तीनों के बिना सम्भव ही नहीं है। इन तीनों वृत्तियों का पराकाष्ठा को पहुँच जाना ही निर्वाण है, यह कहें तो भी अनुचित न होगा।

भगवान महावीर ने जिस मार्ग से निर्वाण का अनुभव किया उस मार्ग का यथार्थ प्रतिबिम्ब प्रस्तुत मोक्षशास्त्र अथवा तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के कई अध्यायों में मिलता है। न केवल प्रतिबिम्ब ही प्रत्युत अनुभवियों के आचरित सत्य के प्रयोग करने की ठीक योजना व क्रमबद्ध नियम भी उसमें मौजूद हैं, जो दण्ड विधान की धाराओं के समान ऐसे अनुशासन हैं कि जिनकी मात्रा तक नहीं बदली जा सकती। दण्ड विधान की धाराओं का जरा भी उल्लङ्घन होने पर जो दण्ड सहना पड़ता है उससे भी कहीं ज्यादा उत्कट यातना, मोक्षशास्त्र के अनुशासनों का उल्लङ्घन करने वाले साधक को अपने जीवन में सहन करनी पड़ती है।

भगवान महावीर के अनुभव किए हुए निर्वाण-मार्ग का प्रतिबिम्ब

मोक्षशास्त्र के अनुशासनों में है क्या क्या? पदार्थ के स्वरूप-परीक्षण की कसौटियाँ[१], सर्व धर्म समभाव को समझाने वाले नयवाद

१—मोक्षशास्त्र अध्याय १ सू० ५–६–७–८

मोक्षशास्त्र में है क्या ?

का विचार[१], जीवन की गहराई में बहुत सूक्ष्मता से मिले हुए और जीवन-विकास को रोक रखने वाले संस्कारों की तहों का वर्गीकरण[२], विश्व की विविध विचित्रताओं का प्रदर्शन[३], परमाणु और तज्जन्य पदार्थ-विज्ञान का पृथक्करण[४], साधक द्वारा पालन किये और आचरण में लाये जाने वाले अनुशासन[५], उन अनुशासनों के उल्लङ्घन का परिणाम[६], साधक की साधना में आनेवाली बाधायें[७], साधक की मनोदशा के विविध प्रकार[८], साधक के लिए साधना की पद्धतियाँ[९] आदि अनेक अपूर्व बातें इन पृष्ठों में अङ्कित हैं, जो एकमात्र निर्वाण के ही उद्देश्य से लिखी गई हैं।

मूल आगमों में ये सब बातें हैं तो सही, परन्तु कहीं उपदेश-रूप में हैं, कहीं कथानक द्वारा, कहीं उपनय द्वारा और कहीं दृष्टान्त-द्वारा ये बातें बताई गई हैं, जब कि इस सूत्र में इन्हीं सब बातों को एक अनुशासन के रूप में रक्खा गया है। यही इस ग्रन्थ की अपूर्व विशेषता है।

मोक्षशास्त्र की विशेषता

१—अध्याय १ सू० ३४-३५।
२—अध्याय २ सू० १-६ अध्याय ८ सू० १-१४।
३—अध्याय ३-४।
४—अध्याय ५ सू० ३२-३६।
५—अध्याय ७ सू० १-७ सू० १४-१७।
६—अध्याय ६ सू० ११-२६।
७—अध्याय ९ सू० ९।
८—अध्याय ९ सू० ४८।
९—अध्याय ९ सू० १८-२०।

सूत्रकार

सूत्रकार कौन है ? इस प्रश्न का निर्णय इस ग्रन्थ की इस प्रशस्ति से ही हो जाता है —

> वाचकमुख्यस्य शिवश्रियः प्रकाशयशसः प्रशिष्येण ।[1]
> शिष्येण घोषनन्दिक्षमणस्यैकादशाङ्गविदः ॥१॥
> वाचनया च महावाचकक्षमणमुण्डपादशिष्यस्य ।
> शिष्येण वाचकाचार्यमूलनाम्नः प्रथितकीर्तेः ॥२॥
> न्यग्रोधिकाप्रसूतेन विहरता पुरवरे कुसुमनाम्नि ।
> कौभीषणिना स्वातितनयेन वात्सीसुतेनार्घ्यम् ॥३॥
>
> × × × ×
>
> इदमुच्चैर्नागरवाचकेन सत्त्वानुकम्पया दृब्धम् ।
> तत्त्वार्थाधिगमाख्यं स्पष्टमुमास्वातिना शास्त्रम् ॥४॥

उमास्वाति का परिचय

उक्त प्रशस्ति से प्रतीत होता है कि न्यग्रोधिका ग्राम में उत्पन्न उमास्वाति वाचक विहार करते हुए कुसुमपुर अर्थात् पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) महानगर में पहुँचे और वहाँ उन्होंने इस तत्त्वार्थाधिगम नाम के सूत्र की रचना की। इनके पिता स्वाति, माता वात्सी, गोत्र कौभीषणि, गुरु घोषनन्दि क्षमण, विद्यागुरु मूलवाचक और धर्म शाखा उच्चैनागर थे—यह सब भी इस प्रशस्ति में ही बतलाया हुआ है।

१—तत्त्वार्थभाष्य अन्तिम प्रशस्ति—तत्त्वार्थसूत्र—रायचन्द्रजैन पृ०—२४६ ।

इस पर से यह भी माना जा सकता है कि वर्तमान विहार (मगध) ही वाचक का विहार-प्रदेश था और मगध में ही वह पैदा हुए थे। न्यग्रोधिका ग्राम पटना के आसपास का कोई नगरोहा, नगरोहिया या नगाड़िया नाम का गाँव होना चाहिए।

वाचक-सम्बन्धी भ्रम

वाचक सम्बन्धी अन्य[1] भ्रमों का भी इस प्रशस्ति से निराकरण होता है। वाचक की जाति, समय या तत्कालीन वातावरण के बारे में प्रशस्ति सीधा प्रकाश तो नहीं डालती, तो भी ऐसी सामग्री तो उसमें मिलती ही है जिस पर से हम इस सम्बन्ध में थोड़ी बहुत कल्पना कर सकते हैं।

१—"हारियगुत्त साइं च"—२६ नंदीसू० स्थविरावलि। उक्त गाथा में 'स्वाति' का नाम देखकर धर्मसागर उपाध्याय ने, केवल नामादि की समानता के कारण, स्वाति को उमास्वाति समझ लिया है और वह अपनी पट्टावलि में तत्त्वार्थ आदि ग्रन्थों का रचयिता भी स्वाति को ही मानते हैं—धर्मसागर-कृत तपागच्छ पट्टावलि—पट्टावलिसमुच्चय, पृष्ठ ४६। परन्तु उन्होंने यदि तत्त्वार्थ की प्रशस्ति पर ध्यान दिया होता तो ऐसी संभावना न करते, क्योंकि उपयुक्त गाथा में 'स्वाति' का गोत्र हारीत है और तत्त्वार्थ की प्रशस्ति में उमास्वाति वाचक अपना गोत्र स्पष्टतया कौभीषणि बतलाते हैं।

दिगम्बरीय परम्परा उमास्वाति का सम्बन्ध आचार्य कुन्दकुन्द के साथ जोड़ती है। पर आचार्य कुन्दकुन्द नन्दि संघ के थे, जब कि उमास्वाति वाचक उच्चैर्नागर शाखा के थे। और दिगम्बर परम्परा में उच्चैर्नागर नामकी कोई शाखा कभी हुई हो यह अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। तदुपरान्त विद्वद्वर नाथूरामजी इस विषय में लिखते हैं—

"यह तो उन्हें (पट्टावलि बनाने वालों को) मालूम नहीं था कि उमास्वाति और कुन्दकुन्द किस-किस समय में हुए हैं; परन्तु चूंकि वे

एक समय ऐसा भी था, जब भारतीय वर्णों में ब्राह्मण मुख्य-रूप माना जाता था। महाविराट के मुखस्थान पर विराजमान, ब्रह्म- उमास्वाति की तेज में दीप्तिमान, ब्रह्मभाव—व्यापकभाव—रखने जाति और धर्म वाला ब्राह्मण अपनी बाहुओं[1] में शौर्य की प्रेरणा करके उन्हें सदा विजयी, अजेय रखता, अपने जानुओं[2] में जागृति भरकर भारतीय व्यापार-वाणिज्य, गोधन और खेती को समृद्ध रखता, और अपने चरण कमलों[3] को सदा सुवासित रखकर उनके द्वारा विश्वभर में सेवा-धर्म की सुगन्ध फैलाता रहता था। अपनी कुक्षि[4] को फुलाकर बड़ा न बनाते हुए, उसे विराट की शोभन योग्य स्थिति में रखने और धन ऐश्वर्य के अजीर्ण से दुर्गन्धित न होने देने के लिए वह सदा सावधान और प्रयत्नशील रहता था। ऐसा ब्राह्मण भला पूज्य ब्राह्मण बनकर सदा विराट के मुखस्थान पर ही क्यों न सुशोभित होता?

बड़े आचार्य थे और प्राचीन थे इसलिए उनका (उमास्वाति और कुन्द-कुन्द का) सम्बन्ध जोड़ दिया और गुरु-शिष्य या शिष्य-गुरु बना दिया। यह सोचने का उन्होंने कष्ट नहीं उठाया कि कुन्दकुन्द कर्नाटक देश के कुण्डकुण्ड ग्राम के निवासी थे और उमास्वाति बिहार में भ्रमण करते थे। उनके सम्बन्ध की कल्पना भी एक तरह से असम्भव है।"

तत्त्वार्थ सूत्र का परिचय : पं० सुखलालजी पृ० ६० ।

१—क्षत्रियों में।
२—वैश्यों में।
३—शूद्रों में।
४—राजा और धनिकों को।

भगवान महावीर का बताया हुआ विश्वशान्ति का क्रान्तिमय सन्देश सबसे पहले इन ब्राह्मणों ने ही ग्रहण किया था। भगवान के प्रथम पट्टधर इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण ही थे। भगवान के समस्त गणधर मगध के भूदेव थे और भगवान की पिछली परम्परा में हुए युगप्रधानों में भी अधिकाधिक संख्या तो इन पवित्र ब्राह्मणों ने ही ले रक्खी है।

जिन-प्रवचन के इन युगप्रधानों में के एक युगप्रधान प्रवर हमारे यह सूत्रकार भी उसी विद्यापरायण ओजस्वी ब्राह्मण वंश के होंगे, ऐसा अनुमान उस गोत्रसूचक विशेषण से ही लगता है जो उन्होंने अपने लिए रक्खा है। माता का गोत्र दर्शक वात्सी नाम भी इसी अनुमान की पुष्टि करता है। अभी भी गोत्र प्रवरों को कायम रखने की लगन खासकर ब्राह्मणवर्ग में ही मौजूद है। ऐसी दशा में प्रस्तुत कृति-द्वारा अपने गोत्र का गौरव अमर करनेवाले श्रीउमास्वाति वाचक ब्राह्मण-वंश के मुक्ता होंगे, यह कल्पना अनुचित प्रतीत नहीं होती।

प्रशस्ति में वाचक की जाति के बारे में जिस प्रकार सामान्यतया प्रकाश डाला हुआ है उसी प्रकार वाचक के समय के बारे में भी वह सर्वथा मौन नहीं मालूम पड़ती।

वाचक ने उक्त प्रशस्ति में अपनी धर्म-शाखा उच्चैर्नागर बतलाई है, वाचक के समय की थोड़ी-बहुत कल्पना तो शाखा-दर्शक इस नाम से ही की जा सकती है।

कल्पसूत्र की स्थविरावली में उच्चानागरी शाखा का उद्गम-सम्बन्धी उल्लेख स्पष्ट रूप में मिलता है। वाचक की कही हुई उच्चैर्नागर और स्थविरावली में बताई हुई उच्चानागरी, ये दोनों शब्द एक ही वाच्य के सूचक हैं। इस निःसन्दिग्ध बात को कोई पाठक भूल न जायें।

वाचक की उच्चानागरी शाखा का समय

कल्पसूत्र स्थविरावली[1] के अनुसार माठर गोत्र का आर्य शान्तिश्रेणिक स्थविर इस उच्चानागरी शाखा का संस्थापक प्रतीत होता है, जो आर्यसुहस्ती की चौथी पीढ़ी में हुआ —

१—थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था—

तं जहा— × × × सुट्ठिय ५ सुप्पडिबुद्धे
× × × ×

थेराणं सुट्ठिय सुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं इमे पंच थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था। तं जहा—थेरे अज्जइंददिन्ने × × ×

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कासवगुत्तस्स अज्जदिन्ने थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते

थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था तं जहा—

थेरे अज्जसंतिसेणिए माढरसगुत्ते थेरे अज्जसीहगिरी × कोसियगुत्ते

थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स × कोसियगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था। तं जहा—थेरे धणगिरी, थेरे अज्जवइरे × × ×

—पट्टावलीसमुच्चय पृ०४-७-८।

आर्य सुहस्ती
|
१ सुस्थित—सुप्रतिबुद्ध
|
२ इन्द्रदिन्न
|
३ दिन्न
|
४ शान्तिश्रेणिक— आर्य सिंहगिरि
|
५ धनगिरि— आर्य वज्र

शान्तिश्रेणिक स्थविर, आर्यवज्र के गुरु आर्यसिंह गिरि के गुरु-भाई होते हैं, इसलिए स्थविर शान्तिश्रेणिक को आर्यवज्र से पहली पीढ़ी में मानें तो इसमें अनुचित कुछ भी नहीं होगा। पट्टावलियों के अनुसार आर्यसुहस्ती का स्वर्गवास वीर सवत्[1] २६१ में और श्रीवज्र का स्वर्गवास वीर सवत्[2] ५८४ म हुआ। इस २६१ से ५८४ के बीच के २६३ वर्षों मे उपर्युक्त प्रकार से कुल पाँच पीढ़ियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें उच्चानागरी शाखा के संस्थापक स्थविर शान्ति-श्रेणिक चौथी पीढ़ी में आते हैं। इस पर से स्थविर शान्तिश्रेणिक क उदयकाल की कल्पना हम वीर सवत् ४७१ के लगभग कर सकते हैं और उपर्युक्त जो शाखा उनसे निकली है वह वीर सवत ४७१ के

१—देखो पट्टावलि-समुच्चय-तपागच्छ पट्टावलि पृ० ४५, पं० ८–१०
२—देखो पट्टावलि-समुच्चय-तपागच्छ पट्टावलि पृ० ४७, पं० ५–६

आस-पास या थोड़ा बहुत आगे पीछे निकली होगी, यह भी अनुमान लगाया जा सकता है।

इतने उल्लेख के साथ हम वाचक की उच्चानागरी शाखा के समय के लगभग पहुंच गये, परन्तु अब इसपर से इस बात का पता लगाना है कि हमारे वाचकजी किस समय में हुए होंगे ?

वाचक के समय की कल्पना

वाचकने अपनी शाखा के साथ अपने दीक्षागुरु,[1] दीक्षाप्रगुरु[2] विद्यागुरु[3] और विद्याप्रगुरु[4] के नाम भी उनके गौरवसूचक पदों के साथ प्रशस्ति में रक्खे हैं पर कल्पसूत्र की स्थविरावली में जब हम और दृष्टिपात करते हैं तो उसमें बताई हुई उच्चानागरी शाखा की परम्परा में इनमें का एक भी नाम नहीं मिलता, फिर भी वाचक की शाखा के समय के बारे में इस स्थविरावलि से कम से कम यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि यह शाखा वीर सम्वत् ४७१ अर्थात् विक्रम सम्वत् के आविर्भाव के लगभग किसी समय स्थापित हुई होगी उससे पहले नहीं और वाचक उमास्वाति उक्त शाखा के प्रारम्भकाल में अथवा उससे एक-दो शताब्दि बाद हुए होंगे, यह सम्भावना भी शाखा की स्थापना के उक्त समय पर से की जा सकती है।

१—एकादशांगधारी घोषनंदि क्षमण।
२—प्रसिद्ध कीर्तिवाले वाचकमुख्य शिवश्री।
३—वाचकाचार्य मूल।
४—महावाचक मुण्डपाद क्षमण।

स्थविरावलि द्वारा शाखा के समय पर से वाचक के समय-सम्बन्धी जो अनुमान हमने किया है, तत्त्वार्थाधिगम पर की गई

वाचक के समय की कल्पना का समर्थन

सर्वार्थसिद्धि-टीका से भी उसकी थोड़ी-बहुत पुष्टि होती है।

भाष्य को छोड़ कर तत्त्वार्थाधिगम की जो-जो टीकायें हुई हैं उन सब में श्रीमान पूज्यपाद की की हुई उक्त टीका सबसे प्राचीन है। चूंकि पुरातत्त्वविद् लोग, आचार्य पूज्यपाद का समय विक्रम की पाँचवीं छठी शताब्दि मानते हैं,[१] इस लिए हमारे वाचक श्रीविक्रमकी उक्त शताब्दि से पहले वे समय में कभी हुए होंगे, यह अवश्य कहा जा सकता है।

यहाँ विचार करने की बात यह है कि जब तत्त्वाथाधिगम के टीकाकार पूज्यपाद का समय विक्रम की पाँचवीं-छठी शताब्दि माना जाता है, तो जिस तत्त्वार्थाधिगम सूत्र की यह टीका है उस सूत्र के प्रणेता वाचक उमास्वाति उससे कितने पहले हुए होंगे ?

इसका निर्णय करते समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि कोई भी ग्रन्थ टीका, या आलोचना का पात्र तभी हो सकता है जब कि वह विद्वानों में बहुत प्रतिष्ठित हो जाय और सर्वसाधारण में आदर के साथ उसका अतिप्रचार हो गया हो।

हवाई जहाज़ के इस वेगवान समय में भी किसी उदार और शिष्ट ग्रन्थ को प्रतिष्ठा प्राप्त करने में सहज ही ७५-८० वर्ष लग जाते

१—देखो तत्त्वार्थ सूत्र का परिचय (पं० सुखलालजी कृत); पृष्ठ ६, पं० २०।

है, तब रिगसती हुई गाडी के समान प्राचीन काल में किसी साम्प्रदायिक ग्रन्थ को प्रतिष्ठा प्राप्त करने में, प्रचार पाने में, आज से चार-छः गुना समय तो लगना ही चाहिए। अत एव तत्त्वार्थाधिगम की रचना हुए बाद उस प्रतिष्ठा प्राप्त होने और टीकापात्र बनने में सहज ही २००-२५० वर्ष बीत गये होंगे। अर्थात् इस विचारधारा पर ध्यान रक्खें तो, हमारे वाचक उमास्वाति के लिए ज्यादा से ज्यादा विक्रम की तीसरी या चौथी शताब्दि की कल्पना की जा सकती है।

विक्रम की पहली,दूसरी शताब्दि के मान जानेवाले आचार्य कुन्दकुन्द[१] के प्राकृत वचनों के साथ,ईस्वी सन् से पूर्व पहली शताब्दि के कणाद[२] के सूत्रों के साथ, ईस्वी सन की दूसरी-तीसरी शताब्दि

१—उत्पाद-व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्। ५ २९	"दव्वं सल्लक्खणियं उप्पाद व्वय-धुवत्तसंजुत्तं।
गुण-पर्यायवद् द्रव्यम्। (श्वेता-म्बरीयपाठ ५ ३७)	गुण-पज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू॥"
सद् द्रव्यलक्षणम् ५ २९ (दिगंबर पाठ) तत्त्वार्थसूत्र	कुंदकुंदका पंचास्तिकाय गा० १०
२—गुण-पर्यायवद् द्रव्यम्—५ ३७	"क्रियागुणवत् समवायिकारण-मिति द्रव्यलक्षणम्"— कणादसूत्र—१, १, ५
द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः—५, ४०	"द्रव्याश्रयि-अगुणवान् × × × इति गुणलक्षणम्"— कणादसूत्र—१, १, १६

पे वात्स्यायन[१] भाष्य के वचनों के साथ, बौद्धों[२] के साथ मतभेद जाहिर करने वाले उल्लेखों के साथ, और पातञ्जलयोगसूत्र के तथा उसके विक्रमीय तृतीय शताब्दि के व्यासभाष्य-गत[३] वाक्यों के साथ तत्त्वार्थमूल अथवा उसके भाष्य को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय,

---

१—सर्वाणि एतानि मतिश्रुतयोरन्तर्भूतानि इन्द्रियार्थसन्निकर्षनिमित्तत्वात्”

१, १२ का तत्त्वार्थभाष्य । चतुर्विधमित्येके नयवादान्तरेण १, ६

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नम्”

१, १, ४ वात्स्यायन भाष्य

और, यथा वा प्रत्यक्षानुमानोपमानाप्तवचनैः प्रमाणैरेकोऽर्थः प्रमीयते”

तत्त्वार्थ सूत्र—१—३५

प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि

१, १, ३ न्यायदर्शनभाष्य

२—पुद्गलानिति च तन्त्रान्तरीया जीवान् परिभाषन्ते—अ० ५ सू० २३ भाष्य।

“केचित्तु सौगतंमन्या अप्यात्मानं प्रचक्षते । पुद्गलव्यपदेशेन तत्त्वान्यत्वादिवर्जितम्” ॥

तत्त्वसंग्रहकारिका ३३६

३०—शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाः सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति × × ×

संहतशुष्कतृणराशिदहनवत् । यथाहि—संहतस्य शुष्कस्यापि तृणराशेरवयवशः क्रमेण दह्यमानस्य

“आयुर्विपाकं कर्म द्विविधं सोपक्रमं निरुपक्रमं च । तत्र यथा आर्द्रं वस्त्रं वितानितं ह्रसीयसा कालेन शुष्येत् तथा सोपक्रमम् । यथा च तदेव संपिण्डितं चिरेण संशुष्येद् एवं निरुपक्रमम् । यथा वा अग्निः शुष्के

तुलनात्मक दृष्टि से उस पर विचार किया जाय तो वाचक व काल-सम्बन्धी उक्त कल्पना बिलकुल ठीक बैठती है।

इसी बात को दूसरे शब्दों में कहें तो, उक्त समस्त बातें वाचक के समय का ठीक निर्णय करने में सीधे तौर पर तो सहायक नहीं हो सकतीं परन्तु यदि इस सम्बन्ध में दूसरे सबल प्रमाण मिल जायँ तो इसमें लेश मात्र शंका नहीं कि इन सब बातों का बहुमूल्य उपयोग होगा। अभी तो ये बातें भी हम उमास्वाति के समय सम्बन्धी उक्त *अनुमान की ओर ही ले जाती हैं।*

पट्टावलियों का भ्रम

कई पट्टावलियों[1] में उमास्वाति का समय वीर सम्वत् ११९० बताया हुआ है। इसके अनुसार तो उनका समय विक्रमी वर्ष ७२० अर्थात् विक्रम की आठवीं शताब्दि होता है। परन्तु पट्टावलियों के इस उल्लेख को कोई अन्तिम

चिरेण दाहो भवति। तस्यैव शिथिलप्रकीर्णापचितस्य सर्वतो युगपदादीपितस्य पवनोपक्रमाभिहतस्य आशुदाहो भवति × × ×

यथा वा धौतपटो जलार्द्र एव संहतश्चिरेण शोषमुपयाति स एव च वितानितः सूर्यरश्मिवाय्वभिहतः क्षिप्रं शोषमुपयाति—

२, ५२ का तत्त्वार्थभाष्य।

कक्षे मुक्तो वातेन समन्ततो युक्तः क्षेपीयसा कालेन दहेत् तथा सोपक्रमम्। यथा वा स एव अग्निस्तृणराशौ क्रमशोऽवयवेषु न्यस्तश्चिरेण दहेत् तथा निरुपक्रमम् तदैकभविकमायुष्करं कर्म द्विविधम् सोपक्रमं निरुपक्रमं च”

३, २२ का योगसूत्रगत भाष्य

१—“श्रीवीराद् नवत्यधिकैकादशशतगते ११९० वर्षे श्रीउमास्वातियुग”—पट्टावलीसमुच्चय पृ० ५२ पं० १ तथा पृ० १५२ पं० ११”

निर्णय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि, जब तत्त्वार्थाधिगम का एक टीकाकार पूज्यपाद स्वामी विक्रम की पाँचवीं-छठी शताब्दि का ठहरता हो तब मूल सूत्रकार विक्रम की आठवीं शताब्दि का कैसे हो सकता है ? यह तो बीज बोने से पहले वृक्ष होने जैसी बात हुई।

पट्टावलियों में वाचक उमास्वाति को द्वितीय उदय का ग्यारहवाँ[1] युगप्रधान बतलाया गया है। उनका गृहवास २० वर्ष, व्रतपर्याय[2] १५ वर्ष, युगप्रधान-काल ७५ वर्ष और कुल आयु ११० वर्ष २ महीने ८ दिन बताई गई है। इसके सिवा पट्टावलि में उनके विषय मे और कोई विशेष बात नहीं मिलती।

उमास्वाति युगप्रधान

भाष्यकार

प्रस्तुत पुस्तक में भाष्य नहीं छापा गया है, फिर भी सूत्रकार के साथ-साथ भाष्यकार के सम्बन्ध म भी थोड़ा विचार करना अप्रासङ्गिक न होगा।

सूत्रकार स्वयं वाचक उमास्वाति ही हैं, इस विषय में तो आज किसी पक्ष का ज़रा भी मतभेद नहीं है, परन्तु भाष्यकार भी क्या वही हैं, या कोई और ? यह प्रश्न अभी तक थोड़ा-बहुत विवादास्पद ही बना हुआ है।

१—देखो पट्टावलि-समुच्चय पृ० २४ पं० १३, पृ० १६ पं० ७, पृ० १४० पं० २४।

२—व्रतपर्याय अर्थात् सामान्य श्रमणपर्याय।

मुझे तो सर्वथा तटस्थता से विचार करने पर भी यही स्पष्ट प्रतीत हुआ कि सूत्रकार और भाष्यकार दोनों एक ही व्यक्ति हैं— और, वह स्वयं वाचक उमास्वाति ही हैं।

जहाँ सूत्रकार और भाष्यकार भिन्न-भिन्न हों वहाँ आगे-पीछे की सूत्रोक्त बातों के सूचक भाष्यगत उल्लेख प्रथम पुरुष की क्रिया भाष्यकार और द्वारा कैसे ठीक बैठ सकते हैं ? उदाहरणार्थ, किसी सूत्रकार की एकता सूत्र का भाष्य लिखते हुए भाष्यकार कहता है कि यह बात हम आगे के अमुक अमुक[1] सूत्र में कहेंगे 'और वह बात

१—"अणवः स्कन्धाश्च" "संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते" इति वक्ष्याम — तत्त्वार्थ भाष्य अ० १ सू० ५ पूना मुद्रण पृ० ६

"नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषादिति वक्ष्याम"—तत्त्वार्थ भाष्य अ० २ सू० ३१ पृ० ५१

"अनादिरादिमांश्च"—तं परस्ताद् वक्ष्याम"—तत्त्वार्थ भाष्य अ० ५ सू० २२ पृ० ११२

"गुणान् लक्षणतो वक्ष्याम"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ५ सू० ३७ पृ० १२२

"तत् पुलाकादिषु विस्तरेण वक्ष्याम"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ६ सू० १६ पृ० १०५

"तान् लक्षणतः परस्ताद् वक्ष्याम"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ५ सू० १ पृ० १०७

"तान् परस्ताद् वक्ष्याम"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ४ सू० १८ पृ० ६५

"त पुरस्ताद्लक्षणतो विधानतश्च विस्तरेणोपदेक्ष्याम"—तत्त्वार्थभाष्य अ० १ सू० १ पृ० ५

उसके लेखानुसार, बाद के उन्हीं सूत्रों में ठीक उसी प्रकार मिल भी जाती है। ऐसी हालत में यह सोचने की बात है कि यदि भाष्यकार मूलकार से भिन्न ही कोई व्यक्ति हो तो वह ऐसा कैसे कर सकता है कि 'हम अमुक बात आगे, अमुक जगह, लिखेंगे'। अन्य (भिन्न) भाष्यकार को तो ऐसा लिखना चाहिए कि 'यह बात सूत्रकार-मूलकार—अथवा आचार्य आगे बतायेंगे'। परन्तु भाष्यकार ने भाष्य में जगह-जगह जो सूचनाएँ की हैं और सूत्र के जो अवतरण[१] रक्खे हैं उनमें अधिकांश स्थानों पर प्रथम पुरुष की—अस्मत्पुरुष की—क्रिया के ऐसे प्रयोग किये गये हैं जो इस बात को पुकार पुकार कर कहते हैं कि मूलकार और भाष्यकार एक ही व्यक्ति हैं।

"तान् लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद् विस्तरेण उपदेक्ष्याम "—तत्त्वार्थभाष्य अ० १ सू० ४ पृ० ७

"तान् परस्ताद् वक्ष्याम "—तत्त्वार्थभाष्य अ० २ सू० ११ पृ० ४४ अ० ४ सू० १ पृ० ८४

"पञ्च पञ्चातिचारा भवन्ति यथाक्रममिति ऊर्ध्वं यद् वक्ष्याम —तत्त्वार्थभाष्य अ० ७ सू० १६ पृ० १६५

१—"ज्ञानं वक्ष्याम "—तत्त्वार्थभाष्य अ० १ सू० ६ पृ० १५

"उक्तमवधिज्ञानम्, मनःपर्यायज्ञानं वक्ष्याम "—तत्त्वार्थभाष्य अ० १ सू० २४ पृ० २८

"उक्ता जीवा अजीवान् वक्ष्याम "—तत्त्वार्थभाष्य अ० ५ सू० १ पृ० १०६

"उक्त आस्रव बन्धं वक्ष्याम "—तत्त्वार्थभाष्य अ० ८ सू० १ पृ० १५०

"इत उत्तरं यद् वक्ष्याम "—तत्त्वार्थभाष्य अ० ८ सू० ७ पृ० १५३

इसके अलावा—

तत्त्वार्थाधिगमाख्यं बह्वर्थं संग्रहं लघुग्रन्थम्।
वक्ष्यामि शिष्यहितमिममर्हद्वचनैकदेशस्य॥
नर्ते च मोक्षमार्गाद् हितोपदेशोऽस्ति जगति कृत्स्नेऽस्मिन्।
तस्मात् परमिममेवेति मोक्षमार्गं प्रवक्ष्यामि॥

इन दोनों कारिकाओं में कहे हुए 'तत्त्वार्थाधिगम नाम के लघुग्रंथ को कहूँगा' 'मोक्षमार्ग का प्रवचन करूंगा' उल्लेख भी सूत्रकार और भाष्यकार के एक होने का ही समर्थन करते हैं।

इनमें का प्रथम उल्लेख तत्त्वार्थाधिगम को कहने अर्थात् उसकी रचना करने की प्रतिज्ञा सम्बन्धी है और दूसरा मोक्ष मार्ग का प्रवचन करना अर्थात् मोक्ष मार्ग का प्रवचन प्रकट प्राप्त यथा विवरण करने की ओर झुकते हुए भाष्य और मूल की एककर्तृता सूचित करने में लेशमात्र भी नहीं हिचकिचाता।

---

[1] "उक्तः प्रकृतिबन्धः, स्थितिबन्धं वक्ष्यामः"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ८ सू० १५ पृ० १६१

"उक्तः स्थितिबन्धः अनुभावबन्धं वक्ष्यामः"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ८ सू० २२ पृ० १०१

"उक्तोऽनुभावबन्धः प्रदेशबन्धं वक्ष्यामः"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ८ सू० २५ पृ० १६२

"उक्तो बन्धः संवरं वक्ष्यामः"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ६ सू० १ पृ० १६४

"परीषहान् वक्ष्यामः"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ६ सू० ८ पृ० १७३

"इत उत्तरं यद् वक्ष्यामः तद्यथा"—तत्त्वार्थभाष्य अ० ६ सू० २२ पृ० १८०

... की प्रारम्भिक कारिकायें—२२, ३१।

मैं समझता हूँ, मूल और भाष्य का कर्ता एक होने की मान्यता सम्बन्धी निश्चित परिस्थिति की ओर हमें ले जाने के लिए इतना ऊहापोह बहुत काफ़ी है।

वाचकश्री किस सम्प्रदाय के थे ? वाचक-वंश की प्रतिष्ठा कैसी थी ? इत्यादि जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए संस्कृत साहित्य और दर्शनशास्त्र के अध्यापक मित्रवर प० सुखलालजी ने तत्त्वार्थ के अपने गुजराती-अनुवाद में वाचक उमास्वाति का जो मनन करने योग्य परिचय दिया है उसे देख लेने की मैं ख़ास तौर पर सिफ़ारिश करता हूँ। यहाँ मैंने जो इतना ऊहापोह किया है वह भी उन्हीं मित्रवर के उक्त परिचय का ही आभारी है।

तत्त्वार्थसूत्र—जैनागमसमन्वय

सूत्रकार और भाष्यकार के बारे में उपर्युक्त विचार कर लेने के बाद यह आवश्यक प्रतीत होता है कि जिस नाम से यह पुस्तक पाठकों के हाथों में पहुँच रही है उस तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय का भी पाठकों को संक्षेप में कुछ परिचय करा दिया जाय।

समन्वयकार ने आगमों के मूल में तत्त्वार्थसूत्र-सम्बन्धी जो सामग्री पाई वह सब इस संग्रह में संगृहीत कर दी है। इस संग्रह को देखने पर प्रायः अनेक स्थानों में तो तत्त्वार्थ के मूल सूत्रों और आगमों के मूल पाठ के बीच शब्दशः और अर्थशः साम्य दृष्टिगोचर होता है। इससे यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि तत्त्वार्थाधिगमसूत्र ने आगमों के पाठ के साथ का अपना घनिष्ठ सम्बन्ध कितनी सरलता के साथ

बनाये रक्खा है। तुलना पद्धति में यदि विश्लेषण की दृष्टि विशेष परिमाण में रही होती तो यह संग्रह 'न भूतो न भविष्यति' जैसा हुआ होता। इतने पर भी जिस स्थिति में यह संग्रह पाठकों के सामने आ रहा है उस स्थिति में भी अधिक उपयोगी तो है ही। तुलनात्मक दृष्टि से अभ्यास करने वालों के लिए तो यह संग्रह खास तौर पर उपयोगी सिद्ध होगा।

समन्वयकार उपाध्याय आत्मारामजी महाराज की समदृष्टि

समन्वयकार जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय आत्मारामजी महाराजने तत्त्वार्थ के सूत्रों को दिगम्बरीय परम्परा के अनुसार रखकर उनकी जो तुलना बताई है, उसका मुख्य कारण उनकी समदृष्टिही है। दिगम्बरीय सूत्रों को लो या श्वेताम्बरीय सूत्रों को लो, उनमें खास फर्क तो बहुत कम है, अत एव कट्टर लोगों में धार्मिक सहिष्णुता का उत्साह जागृत हो, इसी दृष्टि को सामने रखकर समन्वयकार ने दिगम्बरीय सूत्रों को अपने इस संग्रह में मूल भूत रक्खा है।

भेद-नीति पर जीवित रहने वाले कितने ही पण्डित या धर्मगुरु किन्हीं दो सम्प्रदायों के बीच चाहे जितना साम्य होने पर भी 'इन दोनो के बीच अन्तर है,' 'यह तो हमारे विरुद्ध है,' 'इसका सहवास हम नहीं कर सकते,' 'इसके शास्त्र (धर्मग्रन्थ) तो हम पढ़ ही कैसे सकते हैं ?' आदि आदि बातें कहकर और ऐसा मिथ्या वातावरण फैलाकर भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों को परस्पर पास में बैठकर बातचीत करने अथवा एक-दूसरे के हृदयों को आपस में परि-
होने देने का प्रसंग ही नहीं आने देते।

आजकल के ब्रिटिश राजनीतिज्ञ हमारे भारतवर्ष में इसी घातक भेदनीति का प्रयोग करके परस्पर सहोदर जैसी भारत की मुग्ध जनता को कभी एक नहीं होने देते, इसी प्रकार सम्प्रदायों के भेदभाव पर ही निभे रहने वाले अनेक साधु संन्यासी, मौल्वी, पण्डित, धर्मगुरु अथवा पुरोहित आदि जन्तु, गन्दी मक्खी की तरह सर्वत्र भेदभाव का चेप फैलाकर सर्वसाधारण को कलह के रोग से पीड़ित कर रहे हैं।

श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय के बीच अधिक से अधिक समता है, भेद तो नहीं के समान ही है, फिर भी इन दोनों सम्प्रदायों के अनुयायी एक साथ बैठकर कभी भी धार्मिक विचारों का विनिमय नहीं कर सकते, एक-दूसरे के शास्त्रों को खोलकर देखने या समझने की इच्छा भी नहीं करते। ऐसे महानुभावों को समन्वयकार स्पष्टतया सूचित करते हैं कि 'भाइयो! जरा देखो तो, जिसे तुम दिगम्बरीय परम्परा का मोक्षशास्त्र समझते हो उसका श्वेताम्बरीय परम्परा के आगमों के मूल के साथ कितना अधिक निकट-सम्बन्ध है।' और अपने श्वेताम्बरीय अनुयायियों को तो समन्वयकार अपनी इस कृति के द्वारा फटकार कर कहते हैं कि 'हे श्वेताम्बर भाइयो! देखो, कहीं भ्रम में रहकर उक्त मोक्षशास्त्र के अध्ययन से वंचित न रह जाना। अपने आगमों का मूल पाठ समझो या मोक्षशास्त्र—यह सब समझने, विचारने और आचरण में लाने जैसा है, भेदभाव को बढ़ाकर क्लेश का पोषण करने के लिए यह नहीं है।'

आगम-स्वाध्यायी समन्वयकार श्रीमान् -

मुनिवर के हृदय को जहाँ तक मैं समझ सका हूँ वहाँ तक मुझ पर उनके समदृष्टि के गुण की ही अधिकाधिक छाप है—और इसी दृष्टि से मैं उनके इस संग्रह का प्रयोजन धार्मिक समभाव को उत्पन्न करके एवं अधिकाधिक पुष्ट करना ही समझता हूं, जो मेरे लिए तो सोलहों आने सन्तोषकारक है।

और भी, पहले के कितने ही श्वेताम्बर आचार्य[1] इस विशुद्ध समदृष्टिको पोषण देने की धारणा से दिगम्बरीय ग्रन्थों पर टीकायें लिखना भी नहीं भूले हैं। यही नहीं वरन् श्रीयशोविजयगणि[2] नामक मुनिराज ने दिगम्बरीय परम्परासम्मत तत्त्वार्थसूत्रों का गुजराती में अनुवाद भी किया है। इन सब बातों को देखते हुए एक ऐसे समयकी कल्पना की जा सकती है जब श्वेताम्बर और दिगम्बर परस्पर एक दूसरे के ग्रन्थों पर आलोचना लिखते, उनकी अर्थ पूर्ति करते और इस प्रकार परस्पर धार्मिक सहिष्णुता कायम रखने का निरन्तर उद्योग करते रहते थे।

पहले के श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा दिगम्बरीय ग्रन्थों पर कीगई व्याख्याएँ

अपने इन प्राचीन वंशजों के समान प्रस्तुत समन्वयकार ने भी अपने उक्त उद्देश्य को सर्व साधारण तक पहुंचाने के लिए ही इस संग्रह का भारी परिश्रम किया है।

१—श्रीविद्यानन्दि विरचित अष्टसहस्री पर वाचक यशोविजयजी ने यह टीका लिखी है, जो पूना के भण्डारकर में मौजूद है।

२—यह यशोविजयजी गणी वाचक यशोविजयजी से भिन्न व्यक्ति हैं। । समय १७-१८ वीं शताब्दि बयान किया जाता है।

अन्त में समन्वयकार पूज्य श्रीआत्मारामजी से मैं एक प्रार्थना करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, वह यह कि अबकी बार जब इस ग्रन्थ की द्वितीय आवृत्ति का अवसर आवे तो इसमें

समन्वयकार से एक प्रार्थना

१—तत्त्वार्थ के मूल सूत्र,

२—सूत्रों का हिन्दी में प्रामाणिक अर्थ,

३—सूत्रों का पाठान्तर-सहित संशोधित भाष्य,

४—भाष्य का भी भावग्राही अर्थ,

५—सूत्रगत और भाष्यगत भाव के साथ समता रखने वाले अंगोपांग सूत्रों के मूलपाठ,

६—शुद्ध संस्कृतमें उनकी छाया,

७—आगमों के उन उन मूल पाठोंका हिन्दीमे विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण,

८—जहाँ आवश्यकता प्रतीत हो, वहाँ आगमों के मूल पाठ की तत्त्वार्थसूत्र के साथ तुलना करते हुए विश्लेषणात्मक दृष्टि से उनका विशद स्पष्टीकरण,

९—इसके साथ-साथ तुलना करने में यथास्थान वैदिक और बौद्ध आगमों का उपयोग,

१०—वर्तमान विज्ञान की भी वास्तविक सहायता के द्वारा तत्त्वार्थ के भावों का परिस्फुटीकरण,

११—खास-खास शब्दों की तालिका (इण्डेक्स),

१२—मूल और भाष्य में उल्लिखित मत-मतान्तरों का वर्णन और उनका यथोपलब्ध इतिहास,

१३—जैन पारिभाषिक शब्दों की तालिका और उस प्रत्येक शब्द का सप्रमाण स्पष्टीकरण,

१४—वर्तमान आगमों, तत्त्वार्थसूत्र और दिगम्बरीय परम्परा बोधक मतभेद का उल्लेख और उसका स्पष्टीकरण,

१५—दिगम्बरीय पाठ और श्वेताम्बरीय पाठ में जो अन्तर बताया जाता है वह मात्र शब्दस्पर्शी है या अर्थगामी ? इन दोनों पाठों को एक शृंखला में संयुक्त करने की दृष्टि,

१६—तत्त्वार्थसूत्र द्वारा उसके समकालीन वातावरण के बारेमें जो कल्पना उत्पन्न होती हो उसका उल्लेख,

१७—तत्त्वार्थसूत्र पर अभीतक जो-जो टीकायें उपलब्ध हैं उन सबकी सहायता से, वर्तमान युग और विज्ञान को नजरेनज़र रखते हुए, तत्त्वार्थसूत्र का एक व्यापक विवेचन,

आदि उपयोगी अनेक बातों का भी समावेश करदें। ऐसा हुआ तो यह संग्रह बहुत ही उपयोगी एवं सर्वमान्य हो जायगा और सब धर्मों के अनुयायियों को शुद्ध धर्मदृष्टि बतलाने का अपूर्व साधन बनेगा यह निःसन्दिग्ध है।

श्रीमान् उपाध्यायजी ने प्रेमपूर्वक अपने संग्रह की भूमिका लिखने का अवसर प्रदान कर मुझे ऋणी किया है, यह मैं कभी नहीं भूल सकता।

दिल्ली में संवत् १९९१ के चातुर्मास्य के दरम्यान हमारे बीच जो धर्म-स्नेह स्थापित हुआ है वह अधिकाधिक वृद्धिंगत हो, इस दृढ़ संकल्प के साथ मैं अपना यह वक्तव्य समाप्त करता हूं।

ठि० लाला पूरणचन्द
रतनलाल झवेरी,
मालीवाड़ा दिल्ली।
कार्तिकी पूर्णिमा १९९१

बेचरदास

मिलने का पता—

लाला रतनलालजी इन्द्रचन्द्रजी पारख

मालीवाडा, दिल्ली।

लाला गूजरमल प्यारेलाल जैन

चौडा बाजार, लुधियाना।

१४—वर्तमान आगमों, तत्त्वार्थसूत्र और दिगम्बरीय परम्परा के बीच के मतभेद का उल्लेख और उसका स्पष्टीकरण,

१५—दिगम्बरीय पाठ और श्वेताम्बरीय पाठ में जो अन्तर बताया जाता है वह मात्र शब्दस्पर्शी है या अपेक्षाकृत? इन दोनों पाठों को एक शृंखला में संयुक्त करने की दृष्टि,

१६—तत्त्वार्थसूत्र द्वारा उसके समकालीन वातावरण के बारेमें जो कल्पना उत्पन्न होती हो उसका उल्लेख,

१७—तत्त्वार्थसूत्र पर अभीतक जो-जो टीकायें उपलब्ध हैं उन सबकी सहायता से, वर्तमान युग और विज्ञान को मद्देनज़र रखते हुए, तत्त्वार्थसूत्र का एक व्यापक विवेचन,

आदि उपयोगी अनेक बातों का भी समावेश करदें। ऐसा हुआ तो यह संग्रह बहुत ही उपयोगी एवं सर्वमान्य हो जायगा और सब धर्मों के अनुयायियों को शुद्ध धर्मदृष्टि बतलाने का अपूर्व साधन बनेगा यह निःसन्दिग्ध है।

श्रीमान् उपाध्यायजी ने प्रेमपूर्वक अपने संग्रह की भूमिका लिखने का अवसर प्रदान कर मुझे ऋणी किया है, यह मैं कभी नहीं भूल सकता।

दिल्ली में संवत् १९९१ के चातुर्मास्य के दर्म्यान हमारे बीच जो धर्म-स्नेह स्थापित हुआ है वह अधिकाधिक वृद्धिगत हो इस दृढ़ संकल्प के साथ मैं अपना यह वक्तव्य समाप्त करता हूं।

ठि० लाला पूरणचन्द
रतनलाल डावरी,
मालीवाड़ा दिल्ली।
कार्तिकी पूर्णिमा १९९१

बेचरदास

मिलने का पता—

लाला रतनलालजी इन्द्रचन्द्रजी पारख

मालीवाडा, दिल्ली।

लाला गूजरमल प्यारेलाल जैन

चौडा बाजार, लुधियाना।

जैन दर्शन में
तत्त्व-मीमांसा